ORIGINAL RESEARCH PAPER

Arts

KEY WORDS:

तबला वादन की अन्य परम्पराऐं

विभूति मलिक शोधार्थी, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल

तबला वादन की अन्य परंपराओं के बारे में अध्ययन करने से पूर्व 'परंपरा' शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है कि किन परिस्थितियों के कारण कोई शैली या ज्ञान परंपरा के रूप में विकसित हो जाती है।

तबला वादन के क्षेत्र में जिन प्रमुख घरानों का उल्लेख प्राप्त होता है उनकी संख्या छः है इन सभी घरानों का विस्तार इनकी मौलिक विषेशताओं के कारण होता रहा है। प्रत्येक घराने की अपनी वादन शैली है तथा मुख्य बात यह है कि इन सभी की अपनी व्यवस्थित रचना समग्री निर्धारित है जिनके आधार पर प्रत्येक घराने को अलग–अलग पहचाना जा सकता है।अपने निर्धारित वादन क्रम और बंदिशों के निर्वाहन के आधार पर एकल वादन की दृश्टि से समस्त घराने प्रचार में आये किंतु इनके अलावा भी कई परंपराऐं ऐसी हैं जो मूलतः शुद्ध रूप से किसी घराने या उसकी शुद्ध वादन शैली से मेल नहीं खाती। बंदिशों के दृश्टिकोंण से इनका स्वतंत्र अस्तित्व उतना अधिक मान्य नहीं है जितना कि इन शुद्ध रचनाओं से युक्त घरानों का है। अपनी मौलिक विषेशताओं के कारण किसी क्षेत्र विषेश में फैले किसी सांगीतिक वातावरण के अनुरूप निर्मित हुई शैली का विधिवत विस्तार पा जाना एक निश्चित परंपरा के रूप में आगे बढ़ना प्रारंभ करता है। संगीत जगत में प्रचलित महत्वपूर्ण विधाओं अर्थात् गायन, वादन एवं नृत्य के परिप्रेक्ष्य में जब हम ताल या किसी अवनद्ध वाद्य की चर्चा करते हैं(यहाँ हम मात्र शास्त्रीय विधाओं की चर्चा कर रहे हैं।) वर्तमान अवनद्ध वाद्य जोकि भास्त्रीय संगीत की संगत के लिए प्रयोग किए जा रहे हैं उस परंपरा में अग्रणी वाद्य तबला ही माना जा रहा है वर्तमान प्रचलित संगीत के समस्त घराने अपनी मौलिक विषेशताओं जैसे गायन परंपरा, वादन परंपरा एवं नृत्य परंपरा आदि के लिए जानी जा रही है। इन सभी विधाओं का विस्तार तालाश्रित होने के कारण उनके भावों के अनुरूप संगत, अनुगमन, गीत रंजन करने के लिए विषेश प्रकार की वादन शैली की निर्मिति में सहायक सिद्ध होता है अर्थात् तबला वादन की एकल वादन की पद्धति के अलावा भी कई नई रचनाऐं जो संगीत की अन्य विधाओं को आधार प्रदान करने के लिए निर्मित की जाती हैं उनका साथ संगत या स्वतंत्र रूप से विस्तार एवं प्रचार–प्रसार प्रारंभ होता है। इस प्रकार ये नई शैली या पद्धति प्रचार पाने लगती हैं। यह समस्त वादनीय रचनाऐं मूल रूप से स्वतंत्र स्थापित घरानों की रचना के अनुरूप ना होकर संगत विधा के अधिक नजदीक होती हैं अतः एक नई प्रणाली की वादन शैली निर्मित हो जाती है और आगे इनका विस्तार होकर यह परंपरा के रूप में विकसित हो जाती है।

भारत में प्रचलित तबला वादन की प्रमुख परंपराऐं–

भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रमुख प्रचलित आधार ग्रंथों में संगीत की विभिन्न परंपराओं का विस्तृत वर्णन किया गया है जिनमें से कई परंपराऐं क्षेत्र विषेश की होने के कारण प्रचार में आई और घराने के रूप में स्थापित हुई। अवनद्ध वादन के क्षेत्र में शास्त्रीय वादन की श्रेणी में तबला और पखावज का स्थान अग्रणी है जिनमें पखावज का संबंध ध्रुपद या धार्मिक गीतों और अनुश्ठानों से जुड़ा होने के कारण घरानों के साथ कई संप्रदायों के रूप में विकसित हुआ है जबकि तबला वाद्य की निर्मिति पखावज के विकसित रूप में प्रचार में आया। तबला और उसकी वादन शैलियाँ क्षेत्र विषेश की होने के कारण क्रमिक विकास के साथ घरानों के रूप में स्थापित हुई जिनकी मान्यता उनको घराने के रूप में स्थापित होने के मानकों पर आधारित है। किन्तु सांगीतिक गतिविधियों के अन्य क्षेत्र में प्रचलित तबला वादन की अन्य भाषाएँ जो किसी घराने के मानकों पर खरी नहीं उतरीं वह मात्र एक शैली विषेश और परंपरा के रूप में विद्यमान है।

तबला वादन के उपलब्ध ग्रंथों में डॉ. आबान ऐ मिस्त्री के ग्रंथ पखावज और तबला के घराने एवं परंपराऐं में कई परंपराओं का वर्णन किया गया है। जिनमें से कुछ परंपराए मेरे शोध कार्य के लिए समीचिन जान पड़ती है।

1.विश्णुपुर परंपरा– "बंगाल का विश्णुपुर जिला संगीत कला के प्रचार एवं विकास का प्रमुख स्थान रहा है चाहे ध्रुपद गायकी हो या ख्याल, पखावज हो या तबला वादन हर क्षेत्र में उनकी अपनी विषिश्ट परंपरा है। तबले की दो प्रमुख परंपराऐं चली। एक बेचाराम चट्टोपाध्याय द्वारा तथा दूसरी राम प्रसाद बंदोपाध्याय द्वारा स्थापित हुई। विश्णुपुर में पहले पखावज का प्रचार था तत्पश्चात् तबला वादन का विकास हुआ। उल्लेखनीय है कि यह दोनों परंपराऐं लखनऊ घराने से संबंधित हैं।

विश्णुपुर परंपरा की वादन शैली– उपरोक्त ग्रंथ में डॉ. अबान ऐ मिस्त्री जी द्वारा उल्लिखित इस परंपरा की मूल वादन शैली के बारे में अधिक स्पश्ट जानकारी प्राप्त नहीं है किन्तु यह अनुमान लगाया जा सकता है कि तबला वादन के प्रमुख छः घराने दूरी या क्षेत्रफल की दृश्टि से आपस में निकटतम संबंध रखते हैं जबकि विश्णुपुर जोकि बंगाल में स्थित है अन्य घरानों से अधिक दूरी होने के कारण यह परंपरा स्वतंत्र रूप से स्थापित हुई। गायन, वादन, नृत्य के समानान्तर विकास तथा सांगीतिक आदान–प्रदान के कारण यहाँ की वादन भौली तबला एवं पखावज दोनों की भौली पर आधारित है। तबले के पूरब बाज लखनउ एवं फर्रूखाबाद घराने के विद्वानों के द्वारा भी इस परंपरा के विकास में योगदान दिया गया। यह ऐसा उल्लेख इस ग्रंथ से प्राप्त होता है। आपके ग्रंथ के पृश्ठ क्रमांक 166 पर यह उल्लेख है कि श्री बेचाराम चटोपाध्याय जो मूलतः पखावज वादक के रूप में स्थापित थे इससे यह बात स्पश्ट होती है कि विश्णुपुर क्षेत्र में ध्रुपद गायन का प्रचार–प्रसार अधिक रहा होगा चूँकि अन्य गायन विधाओं का प्रचार अत्यधिक बढ़ने के कारण तबला वादन की परंपरा की आव यकता महसूस हुई होगी जिस कारण श्री बेचाराम जी ने अपनी वादन भौली के आधार पर तथा फर्रूखाबाद के प्रवर्तक हाजी विलायत अली खा से शिक्षा प्राप्त की अतः इनकी भौली पखावत के साथ–साथ पूरब बाज की भी जान पड़ती है। कालान्तर में यह परंपरा बंगाल के अन्य क्षेत्रों में फैली।"[1]

"ढाका की, बासक परंपरा– अविभाजित भारत के पूर्व ढाका का क्षेत्र पूर्वी बंगाल में था देश के अन्य स्थानों के समान वहाँ भी छोटे–बड़े जागीदार तथा संपन्न जागीदार थे उनमें से लोकसंगीत के विषेश प्रेमी थे अतः विश्णुपुर के कलाकार प्रायः ढाका आया जाया करते थे अतः इसी आवागमन का प्रभाव वहा की परंपरा पर पड़ा ढाका में तबले का प्रचार एवं प्रसार में बासक परिवार का विषेश योगदान रहा इस परंपरा के अधिकतर कलाकार तबला तबला तथा पखावज दोनों वाद्यों पर समान अधिकार रखते थे तबले के क्षेत्र में विषेश महत्व के कारण ही इस परिवार की यह पृथक परंपरा ही चल पड़ी जो बासक परंपरा के नाम से चल पड़ी।"[2]

वादन शैली– वासक परंपरा की वादन शैली के संबंध में उक्त ग्रंथ में यह उल्लेख है कि यह परंपरा बंगाल की विश्णुपुर के संगीत गतिविधियों से प्रभावित रही है। विश्णुपुर के कई नामी कलाकार अपनी शैली लेकर (ढाका वर्तमान बाग्लादेश) आये चूकि इस क्षेत्र में शास्त्रीय संगीत की कोई शाखा पूर्व स्थापित नहीं थी अतः यहाँ के निवासी श्री राम कुमार बासक ने इस क्षेत्र में संगीत के प्रचार प्रसार के लिए कई योगदान दिए तबला वादन के क्षेत्र में एक नई शैली की स्थापना का श्रेय इन्हें जाता है। इसी कारण इस परंपरा को बासक परंपरा के नाम से जाना जाता है। यहाँ की वादन शैली पर भी विश्णुपुर की तरह पूरब बाज की शैली का प्रभाव है। ढांका की इस परंपरा में पखावज और तबला दोनों की वादन शैली समान रूप से स्थापित है। आगे चलकर यही परंपरा वासक परंपरा के नाम से प्रचलित हुई जो शिश्य संप्रदाय के द्वारा वर्तमान बाग्लादेश एवं बंगाल के कई क्षेत्रों में फैली हुई है।

इंदौर की परंपरा– अवनद्ध वाद्यों की विभिन्न शैलियों में मध्यप्रदेश के कई राजघरानों में तबला और पखावज के कई बड़े सिद्धहस्त वादकों का अभूतपूर्व योगदान रहा है जिसमें से इन्दौर राजघराने का योगदान महत्वपूर्ण है। यहाँ के महराजा ि वाजी राव होलकर भास्त्रीय संगीत और ललित कलाओं के ज्ञाता एवं समर्थक थे। इन्होंने कई बड़े और नामी गायकों, वादकों, नर्तकों को अपने राजाश्रय में आमंत्रित कर उनकी कलाओं को उत्कृश्ट संम्मान एवं राजकीय संरक्षण प्रदान किया फलस्वरूप यहाँ के संगीत की कई भाखाऐं एवं परंपराऐं विकसित हुई।

सर्वप्रथम स्थान विश्वप्रसिद्ध पखावजी पं. नानासाहिब पानसे जी का है उनके लगभग पांच सौ शिश्यों से पानसे की उपाधि स्वरूप पड़ा होगा।

इन्दौर की उस्ताद जहागीर खाँ परंपरा– "नाना पानसे के अतिरिक्त इंदौर में पखावज साथ तबला वादन की परंपरा भी पूर्व से स्थापित थी जिनमें उस्ताद धुलजी खाँ, रहमान खाँ, सुलेमान खाँ, आदि का नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है। इन्दौर की तबला वादन की परंपरा में अभूतपूर्व योगदान उस्ताद जहाँगीर खा ने दिया। इन्दौर के महराजा के द्वारा संगीत के जलसे में आमंत्रित उस्ताद जहाँगीर खाँ ने इन्दौर को जीवन पर्यन्त अपना कार्यक्षेत्र बनाया जहाँगीर खाँ मूलतः लखनऊ घराने के अग्रणी विद्वानों में सुमार थे। इन्दौर रियासत में इन्होंने अपने बाज के अनुरूप वादन जारी रखा तथा एक श्रेश्ठ गुरू के रूप में इन्होंने इन्दौर की वि ाल तबला परंपरा की नींव रखी।

इंन्दौर की इस परंपरा में पूरब बाज के अलावा प ि चम बाज की प्रधानता भी रही है क्योंकि जहांगीर खाँ ने लखनउ के अलावा दिल्ली बाज के खलीफाओं से भी ि ाक्षा प्राप्त की अतः इन्दौर परंपरा की भौली में भी रचनाओं की दृश्टि से आव यकता अनुसार समस्त घरानों की भौली का प्रभाव रहा है। पं. विजय भांकर मिश्र जी के अनुसार आप एक श्रेश्ठ गुरू और कु ाग्र रचनाकार थे अपनी भौली में आव यकता अनुसार नये प्रयोग को आपने खुले दिल से स्वीकार किया है। इसी कारण इन्दौर की यह भौली किसी घराने वि ोश की सीमाओं से मुक्त है"[3]

इन्दौर की तबला वादन परंपरा मात्र एकल वादन के लिए नहीं पहचानी जाती बल्कि

गायन, वादन एवं नृत्य की भौलियों से भी ओत–प्रोत है। आपके कई सुयोग्य ि ाश्य जैसे पं. दिनकर मजूमदार, पं. दीपक गरूण, उस्ताद धुलजी खा, पं. गजानन ताड़े, श्री भारद खरगोनकर आदि ने मध्यप्रदे ा की तबला वादन परंपरा को आगे बढ़ाया है।

तबले की ग्वालियर परंपरा–

मध्यप्रदेश में प्रचलित राजघरानों में ग्वालियर एक ऐसी रियासत है जहाँ संगीत के कई युगपुरूशों ने जन्म लिया तथा संगीत के घरानों के रूप में अपना कार्यक्षेत्र भी बनाया। तबला वादन के क्षेत्र में भी कई नामी वादक कलाकारों ने अपना योगदान दिया तात्कालिक महराज तुकोजीराव जी सिंधिया के भाासनकाल में संगीत की गतिविधियों के अन्तर्गत विख्यात तालज्ञ उस्ताद जोरावर सिंह को राजाश्रय प्रदान किया गया। ऐसा अनुमान है कि जोरावर सिंह महाराश्ट के किसी विख्यात पखावज एवं तबला के परिवार से संबंध रखते हैं किंतु इस बात की कोई ठोस जानकारी उपलब्ध नहीं है। दतिया एवं ग्वालियर के सुप्रसिद्ध पखावजी पं. कुदउ सिंह एवं जोरावर सिंह दोनों समकालिक होने के कारण इस क्षेत्र में तबला और पखावज समान रूप से प्रचार में रहा है।

जोरावर सिंह की शिश्य परंपरा में पुत्र सुखदेव सिंह एवं पौत्र पर्वत सिंह तथा इनके पुत्र माधव सिंह, विजय सिंह एवं गोपाल सिंह ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया

ग्वालियर की तबला वादन परंपरा में पखावज और तबला के बोलों को मिश्रित कर तबला सहित्य की रचनाओं जैसे उठान पे ाकार, कायदा, रेला, चक्रदार आदि में कई प्रयोग किए गए।

तबले की ललियाना परंपरा– "यह परंपरा उत्तर प्रदेश से प्रारंभ होकर पूरे भारत में फैली हुई है। अपनी नवीनता और सौंदर्यता के लिए पहचान बनाने वाली यह परंपरा तबला जगत के प्रख्यात खलीफा उस्ताद मुनीर खाँ के द्वारा प्रारंभ की गई, मुनीर खाँ मूलतः फर्रूखाबाद घराने के उच्च कोटि के तबला वादक थे। इन्होंने फर्रूखाबाद तबला वादक उस्ताद हुसैन अली से पन्द्रह वर्शो तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आप विभिन्न घरानों के लगभग चौबीस उस्तादों के गंडा बंध शागिर्द हुए। इसी कारण इनकी स्वयं की शैली विकसित हो गई जिसमें आवश्यता अनुसार पूरब और पश्चिम बाज का समावे ा देखने मिलता है। इस परंपरा की विषेशता यह है कि बंदिशों के मूल आघात स्थानों को लौ अर्थात् स्वर युक्त ध्वनि के साथ मिश्रित करके एक नवीन शैली को विकसित किया। इस परंपरा की शाखा उत्तर से लेकर पूरे पश्चिम भारत महाराष्ट्र आदि राज्यों में फैली हुई है। इस परंपरा में गुलाम हसैन, अमीर हुसैन खाँ, अहमद जान थिरकवा, लाल जी गोखल हबीबुद्दीन खां, सुधीर सक्सेना, बापू पटवर्धन आदि रहे है।"[4]

संदर्भ सूची–

1. मिस्त्री, डॉ. अवान, पृ.166
2. मिस्त्री, डॉ. अवान, पृ.167
3. मिश्र, विजय ांकर, तबला पुराण, पृ.–237
4. मूलगांवकर, पं. अरविंद, तबला